गाँधी दर्शन की प्रासंगिकता

प्रोफेसर महावीर सरन जैन

गाँधी दर्शन की प्रासंगिकता पर विचार करने के पूर्व यह जानना आवश्यक है कि गाँधी के व्यक्तित्व एवं विचार दर्शन का मूल आधार क्या है? व्यक्तित्व की दृष्टि से विचार करें तो गाँधी जी राजनीतिज्ञ हैं, दार्शनिक हैं, सुधारक हैं, आचारशास्त्री हैं, अर्थशास्त्री हैं, क्रान्तिकारी हैं। समग्र दृष्टि से गाँधी के व्यक्तित्व में ये सब हैं। मगर इस व्यक्तित्व का मूल आधार धार्मिकता है।

गाँधी का धर्म परम्परागत धर्म नहीं है। गाँधी का धर्म विभाजक दीवारें खड़ी नहीं करता। गाँधी का धर्म बाँटता नहीं है। गाँधी के धर्म का अर्थ है – ईश्वरमय जीवन जीना। ईश्वर का मतलब किसी रूप साँचे में ढला देवता नहीं है। ईश्वर का अर्थ है – सत्य/सत्याचरण। गाँधी जी ने बार–बार कहा – 'सत्य के अतिरिक्त अन्य कोई ईश्वर नहीं है '। 'विश्व के सभी धर्म, भले ही और चीजों में अंतर रखते हों, लेकिन सभी इस बात पर एकमत हैं कि दुनिया में कुछ नहीं बस सत्य जीवित रहता है'। इस ईश्वर की या इस सत्य की प्राप्ति तथा अनुभव का आधार है – प्रेम एवं अहिंसा। ' मेरा धर्म सत्य और अहिंसा पर आधारित है। सत्य मेरा भगवान है। अहिंसा उसे पाने का साधन'।

गाँधी का धर्म मनुष्य की पाशविक प्रकृति को बदलने का उपक्रम है। धर्म मनुष्य की वृत्तियों के उन्नयन की प्रक्रिया है। धर्म एक समग्र सत्य साधना है। धर्म अन्तः करण के सत्य से चेतना का सम्बन्ध स्थापित करना है। धर्म वह पवित्र अनुष्ठान है जिससे चित्त का, मन का, चेतना का परिष्कार होता है। धर्म वह तत्व है, जिसके आचरण से व्यक्ति अपने जीवन को चरितार्थ कर पाता है। धर्म मनुष्य में मानवीय गुणों के विकास की प्रभावना है, धर्म सार्वभौम चेतना का सत्संकल्प है। गाँधी के पूर्व भारतीय अध्यात्मिक साधना का लक्ष्य था – मोक्ष प्राप्त करना/निर्वाण प्राप्त करना/बैकुंठ प्राप्त करना/भगवान की समीपता प्राप्त करना। गाँधी का लक्ष्य है – मनुष्य मात्र की निरन्तर सेवा करना। ' स्वयं को जानने का सर्वश्रेष्ठ तरीका है स्वयं को औरों

की सेवा में डुबो देना'। गाँधी जी का भारत के संदर्भ में तात्कालिक उद्देश्य था – भारत की स्वाधीनता । भारत की सामान्य जनता में स्वाभिमान को जगाने, स्वाधीनता प्राप्ति के लिए सामूहिक चेतना का निर्माण करने, भारतीय राष्ट्रीयता के नवउत्थान का शंखनाद करने तथा दासता की श्रृंखलाओं को चूर–चूर करने का काम जिन लोगों ने किया उनको प्रेरणा देने का सबसे अधिक काम गाँधी ने किया और इसी कारण ये राष्ट्रपिता हैं। इनके प्रेरणाप्रद व्यक्तित्व को सोहन लाल द्विवेदी ने शब्दाकार दिया : 'चल पड़े जिधर दो डग, मग में, चल पड़े कोटि पग उसी ओर; पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि, पड़ गए कोटि दृग उसी ओर'। इस नाते गाँधी का देशभक्तों की पंक्ति में सबसे ऊँचा स्थान है। इतना होते हुए भी गाँधी की देशभक्ति मंजिल नहीं; अनन्त शान्ति तथा जीव मात्र के प्रति प्रेमभाव की मंजिल तक पहुंचने के लिए यात्रा का एक पड़ाव मात्र है। गाँधी जी ने कहा :'जिसे सत्य की सर्वव्यापक विश्व भावना को अपनी आँख से प्रत्यक्ष देखना हो उसे निम्नतम प्राणी से आत्मवत प्रेम करना चाहिए'। गाँधी के जीवन दर्शन से सत्य, अहिंसा एवं प्रेम की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। 'वैष्णव जण तो तेणे कहिये, जे पीर पराई जाणे रे'।

दक्षिण अफ्रीका और भारत में उन्होंने सार्वजनिक आन्दोलन चलाए। इन जन आन्दोलनों से उन्होंने सम्पूर्ण समाज में नई जागृति, नई चेतना तथा नया संकल्प भर दिया। उनके इस योगदान को तभी ठीक ढंग से समझा जा सकता है जब हम उनके मानव प्रेम को जान लें, उनके सत्य को पहचान लें, उनकी अहिंसा भावना से आत्मसाक्षात्कार कर लें। गाँधी के ईश्वर को तभी अनुभूत किया जा सकता है जब उनके शब्दों के मर्म को आत्मसात कर लें : 'लाखों करोड़ों गूंगों के हृदयों में जो ईश्वर विराजमान है, मैं उसके सिवा अन्य किसी ईश्वर को नहीं मानता। वे उसकी सत्ता को नहीं जानते, मैं जानता हूँ। मैं इन लाखों–करोड़ों की सेवा द्वारा उस ईश्वर की पूजा करता हूँ जो सत्य है अथवा उस सत्य की जो ईश्वर है।'

गाँधी का जीवन दर्शन क्या आज भी प्रासंगिक है अथवा आज यह अपनी प्रासंगिकता, उपयोगिता एवं सार्थकता खो चुका है। यह सत्य है कि नए जमाने को नए जीवन मूल्य चाहियें। यह तो हम अपने दैनिक जीवन में देखते हैं कि प्रत्येक

व्यक्ति परिस्थितियों एवं संदर्भों के अनुरूप अपने व्यवहार को ढालता है। विवाह में शरीक होने के लिए वह जिस प्रकार की तैयारी करता है, परिधान धारण करता है, विवाहोत्सव में जिस प्रकार का वाग्व्यवहार एवं आचरण करता है; मरघट में वह उससे भिन्न करता है। गाँधी ने भी अपने युग में ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्ति पाने के लिए तथा तत्कालीन देश की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए जिस प्रकार का असहयोग आन्दोलन चलाया था, गुलामी से जकड़े एवं आर्थिक दृष्टि से दयनीय देश को उबारने के लिए चरखा कातने, खादी के वस्त्र पहनने तथा विदेशी वस्त्रों एवं वस्तुओं का बहिष्कार करने के लिए प्रेरित किया था तथा आत्म शुद्धि के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने पर बल दिया था उनकी प्रासंगिकता पर अवश्य प्रश्न लगाए जा सकते हैं। कुछ लोग हैं जो गाँधी को ओढ़ने और बिछाने का काम करते हैं, गाँधी की नकल करके आज के गाँधी बनने का ढोंग करते हैं। मैं पाखंडी करतबों की प्रासंगिकता की बात नहीं कर रहा हूँ। मैं गाँधी के जीवन दर्शन की प्रासंगिकता की बात कर रहा हूँ।

समकालिक जीवन दर्शन एवं गाँधी दर्शन :

गाँधी दर्शन के अतिरिक्त संकालिक युग में वैज्ञानिक दर्शन, मार्क्सवाद एवं अस्तित्ववाद सर्वाधिक प्रभावी एवं चर्चित जीवन दर्शन हैं। विज्ञान की उपलब्धियों एवं अनुसंधानों ने मनुष्य को चमत्कृत कर दिया है। प्रतिक्षण अनुसंधान हो रहे हैं। जिन घटनाओं को न समझ पाने के कारण उन्हें अगम्य रहस्य मान लिया गया था वे आज अनुसंधेय हो गयी हैं। तत्वचिन्तकों ने सृष्टि की बहुत–सी गुत्थियों की व्याख्या परमात्मा एवं माया के आधार पर की। इस कारण उनकी व्याख्या इस लोक का यथार्थ न रहकर परलोक का रहस्य बन गयी। आज का व्यक्ति उस रहस्य के बारे में भी जानना चाहता है। अन्वेषण का जिज्ञासा बढ़ती जा रही है। आज जितना भौतिक विकास हुआ है, वह आज के पहले कल्पनातीत था। मगर इसके साथ यह भी तथ्य है कि भौतिकवादी प्रगति एवं विकास के बावजूद मनुष्य सुखी नहीं है। वह मकान तो आलीशान बना पा रहा है मगर घर नहीं बसा पा रहा है। परिवार के सदस्यों के बीच प्यार एवं विश्वास की कमी होती जा रही है। व्यक्ति की चेतना क्षणिक, संशयपूर्ण एवं तात्कालिकता में केन्द्रित होती जा रही है। सम्पूर्ण भौतिक सुखों को अकेला ही भोगने की दिशा में व्यग्र मनुष्य अन्ततः अतृप्ति का अनुभव कर रहा है। वैज्ञानिक विकास के कारण हमने जिस शक्ति का संग्रह किया है, उसका उपयोग किस प्रकार हो; प्राप्त गति एवं ऊर्जा का नियोजन किस प्रकार हो – यह

आज के युग की जटिल समस्या है। वैज्ञानिक दर्शन की सीमा विज्ञान की सीमा के कारण भी स्पष्ट है। विज्ञान बुद्धि एवं तर्क मात्र के आश्रित है। मानवीयता एवं सामाजिकता केवल तर्क एवं बुद्धि से संगठित नहीं होते। उनके संगठन में तर्क एवं बुद्धि के अतिरिक्त कल्पना, मनोभाव एवं संवेगों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जीवन में केवल बुद्धिजगत के ही नहीं अपितु भावजगत के तत्व भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। गाँधी ने विज्ञान की विकासवादी एवं तार्किक दृष्टि का समर्थन किया तथा प्रतिपादित किया कि 'निरंतर विकास जीवन का नियम है'। इतना होते हुए भी वे इस बात के लिए सजग रहे कि विज्ञान को अपना कार्य मानवता के हित के लिए करना चाहिए। मानवता रहित विज्ञान को उन्होंने सात पापों में से एक पाप के रूप में निरूपित किया : ' सात घनघोर पाप : 1. काम के बिना धन 2. अंतरात्मा के बिना सुख 3. मानवता के बिना विज्ञान 4. चरित्र के बिना ज्ञान 5. सिद्धांत के बिना राजनीति 6. नैतिकता के बिना व्यापार 7. त्याग के बिना पूजा '।

मार्क्सवाद वर्ग संघर्ष पर आधारित है। साम्यवादी विचारधारा मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के सम्बन्ध में अत्यन्त निर्मम तथा कठोर है। वर्ग संघर्ष एवं द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी चिन्तन के कारण वह समाज को बांटती है। गतिशील पदार्थों की विरोधी शक्तियों के संघर्ष या द्वन्द्व को जीवन की भौतिकवादी व्यवस्था के मूल में मानने के कारण सतत संघर्ष की भूमिका प्रदान करती है; मानव जाति को परस्पर अनुराग एवं एकत्व की आधारभूमि प्रदान नहीं करती। चूँकि मार्क्सवाद हिंसात्मक क्रांति में विश्वास करता है, इस कारण जिन देशों में हिंसात्मक क्रांतियाँ हुईं ; उनकी परिणति मानसिक उत्पीड़न में हुई। हिंसा के माध्यम से सत्ता पर कब्जा करने के बाद शासनाध्यक्ष के कोष में आत्म–स्वातंत्र्य शब्द की सत्ता समाप्त हो जाती है। सभी प्रकार की स्वतंत्रता का दमन किया जाता है। हमने पूर्वी यूरोप के समाजवादी गण राज्यों की स्थिति को सन् 1984 से 1988 की अवधि में यूरोप प्रवास में अपनी आँखों से देखा एवं भोगा जहाँ जन क्रांति के बाद जनता को समेटकर मजदूर वर्ग, फिर मजदूर वर्ग को 'कम्युनिस्ट पार्टी', कम्युनिस्ट पार्टी को 'कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति का पोलित ब्यूरो', फिर कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्र समिति के पोलित ब्यूरो को 'कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति का सचिव

मंडल' तथा इस सचिव मण्डल को व्यक्ति विशेष की तानाशाही में केन्द्रित कर दिया गया। गाँधी का समाजवाद एवं साम्यवाद के समता के प्रत्यय में विश्वास ही नहीं था अपितु उसे उनका समर्थन भी प्राप्त था मगर हिंसा के वे विरोधी थे। उनका कथन है : 'हमारा समाजवाद अथवा साम्यवाद अहिंसा पर आधारित होना चाहिए जिसमें मालिक मजदूर एवं जमींदार किसान के बीच सद्भाव पूर्ण सहयोग हो'। वे सामाजिक समता के पक्षधर थे : 'ईश्वर इतना निर्दयी एवं क्रूर नहीं हो सकता कि पुरुष–पुरुष और स्त्री–स्त्री के बीच भेदभाव करे'।

अस्तित्ववादी दर्शन यह मानता है कि मनुष्य का स्रष्टा ईश्वर नहीं है और इसीलिए मानव–स्वभाव, उसका विकास, उसका भविष्य भी निश्चित एवं पूर्व मीमांसित नहीं है। मनुष्य वह है जो अपने आपको बनाता है। मानव को महत्व देते हुए भी अस्तित्ववादी–दर्शन समाज के धरातल पर अत्यन्त अव्यवहारिक है। वह यह मानता है कि चेतनाओं के पारस्परिक सम्बन्धों की आधार भूमि सामंजस्य नहीं अपितु विरोध है। व्यक्तियों के अस्तित्व वृत्तों के मध्य संघर्ष, भय, घृणा आदि भाव हैं। इस प्रकार अस्तित्ववादी दर्शन व्यक्ति और व्यक्ति के मध्य संघर्ष एवं अविश्वास की भूमिका का निर्माण करता है।

मध्ययुग में विकसित धर्म एवं दर्शन के परम्परागत स्वरूप एवं धारणाओं के प्रति आज के व्यक्ति की आस्था नहीं है। मध्ययुगीन चेतना के केन्द्र में ईश्वर का कर्तृत्व रूप प्रतिष्ठित था। मध्ययुगीन धर्म एवं दर्शन के प्रमुख घटक थे – स्वर्ग की कल्पना, सृष्टि एवं जीवों के कर्ता रूप में ईश्वर की कल्पना, वर्तमान जीवन की निरर्थकता का बोध, अपने देश एवं काल की माया एवं प्रपंचों से परिपूर्ण अवधारणा। अपने श्रेष्ठ आचरण, श्रम एवं पुरुषार्थ द्वारा अपने वर्तमान जीवन की समस्याओं का समाधान करने की ओर हमारा ध्यान कम गया, अपने आराध्य की स्तुति एवं जयगान करना ही हमारी धर्मचर्या का पर्याय हो गया। धर्म की आड़ में अपने स्वार्थों की सिद्धि करने वाले धर्म के दलालों ने अध्यात्म–सत्य को भौतिकवादी आवरण से ढकने का प्रयास किया। इनकी चिन्ता का केन्द्र मनुष्य की वर्तमान समस्याओं का समाधान नहीं था। इन्होंने मनुष्य को स्वर्ग अथवा बहिश्त में पहुँचकर मौजमस्ती की जिंदगी बिताने की राह दिखाई और उपदेश दिया कि हमारे माध्यम से अपने आराध्य के प्रति तन–मन–धन से समर्पण करो – पूर्ण आस्था, पूर्ण विश्वास, पूर्ण

निष्ठा के साथ भक्ति करो। तर्क को साधना पथ का सबसे बड़ा अवरोधक तथा वर्तमान की सारी मुसीबतों का कारण 'भाग्य' अथवा 'ईश्वर की मर्जी ' को मान लिया गया। धर्म के ठेकेदारों ने पुरुषार्थवादी–मार्ग के मुख्य–द्वार पर ताला लगा दिया। समाज या देश की विपन्नता को उसकी नियति मान लिया गया। समाज स्वयं भी भाग्यवादी बनकर अपनी सुख–दुःखात्मक स्थितियों से सन्तोष करता रहा। इस बारे में गाँधी की दृष्टि स्पष्ट है : 'विश्वास को हमेशा तर्क से तौलना चाहिए। जब विश्वास अंधा हो जाता है तो मर जाता है'।

आज के युग ने यह चेतना प्रदान की है कि विकास का रास्ता हमें स्वयं बनाना है। किसी समाज या देश की समस्याओं का समाधान कर्म–कौशल, व्यवस्था–परिवर्तन, वैज्ञानिक तथा तकनीकी विकास, परिश्रम तथा निष्ठा से सम्भव है। इस कारण व्यक्ति, समाज तथा देश अपनी समस्याओं के समाधान करने के लिए तत्पर हैं, जिन्दगी को बेहतर बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति एवं विकास की ललक बढ़ रही है। आज के मनुष्य की रूचि अपने वर्तमान जीवन को संवारने में अधिक है। उसका ध्यान 'भविष्योन्मुखी' न होकर वर्तमान में है। वह दिव्यताओं को अपनी ही धरती पर उतार लाने के प्रयास में लगा हुआ है। वह पृथ्वी को ही स्वर्ग बना देने के लिए बेताब है। मध्ययुगीन चेतना के केन्द्र में ईश्वर प्रतिष्ठित था। आज की चेतना के केन्द्र में मनुष्य प्रतिष्ठित है। मनुष्य ही सारे मूल्यों का स्रोत है। वही सारे मूल्यों का उपादान है। व्यक्ति परम्परागत मूल्यों पर विश्वास नहीं कर पा रहा है क्योंकि वे अविश्वसनीय एवं अप्रासंगिक हो गये हैं। नये युग को नये जीवन–मूल्य चाहिए। आज के संत्रस्त मनुष्य को आशा एवं विश्वास की आलोकशिखा थमानी है। आज के धार्मिक एवं दार्शनिक मनीषियों को वह मार्ग खोजना है जिससे मानव अपनी बहिर्मुखता के साथ–साथ अन्तर्मुखता का भी विकास कर सके। पारलौकिक चिन्तन व्यक्ति के आत्म विकास में चाहे कितना भी सहायक हो किन्तु उससे सामाजिक सम्बन्धों की सम्बद्धता, समरसता एवं समस्याओं के समाधान में अधिक सहायता नहीं मिलती। आज के भौतिकवादी युग में केवल वैराग्य से काम चलने वाला नहीं है। भौतिकवाद का अतिरेक भी मनुष्य को संतुष्ट नहीं कर पा रहा है। आज हमें मानव की भौतिकवादी इच्छाओं को संयमित करना होगा, स्वार्थ की कामनाओं में परार्थ का रंग मिलाना होगा। आज मानव को न तो

परम्परागत दर्शन शांति दे सकता है कि केवल ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है तथा न केवल भौतिक तत्वों की ही सत्ता को सत्य मानने वाला दृष्टिकोण जीवन के उन्न्यन में सहायक हो सकता है। आज के संसार को ऐसे धर्म–दर्शन की आवश्यकता है जो उसकी वर्तमान समस्याओं का समाधान कर सके। मन की कामनाओं को नियंत्रित किये बिना समाज रचना संभव नहीं है। इस संदर्भ में यह ध्यातव्य है कि मानव मन की असीम कामनाओं को सीमित करने की क्षमता भौतिकवादी दृष्टि में नहीं है; इस क्षमता के लिए मानव मन में उदारता, सहिष्णुता एवं प्रेम की भावना का विकास आवश्यक है। गाँधी का मत था कि 'क्रोध एवं असहिष्णुता सही समझ के दुश्मन हैं'।

व्यक्ति धर्म को छोड़ना नहीं चाहता। मगर परम्परागत धर्म उसके विज्ञानसम्मत विवेक को संतुष्ट नहीं कर पा रहा है। पाश्चात्य समाज ऐसे किसी धर्म की कल्पना नहीं कर पा रहा है जिसका स्वरूप ईश्वर के कर्तृत्व के बिना विवेचित किया जा सके। अध्यात्म एवं विज्ञान के बीच सामरस्य का मार्ग स्थापित करने के लिए परम्परागत धर्म की इस मान्यता को छोड़ना होगा कि यह संसार ईश्वर की इच्छा की परिणति है। हमें विज्ञान की इस दृष्टि को स्वीकार करना होगा कि सृष्टि रचना के व्यापार में ईश्वर के कर्तृत्व की कोई भूमिका नहीं है। सृष्टि रचना व्यापार में प्रकृति के नियमों को स्वीकार करना होगा। विज्ञान को भी अपनी भौतिकवादी सीमाओं का अतिक्रमण करना होगा। विज्ञान विशुद्ध रूप से भौतिकवादी रहा है। विश्व के मूल में पदार्थ एवं शक्ति को ही अधिष्ठित देखता आया है। विज्ञान ने अभी तक सत्ता के भौतिक क्षितिज मात्र का ही स्पर्श किया है। उसे भविष्य में भौतिक क्षितिज के पार की अपार्थिव चिन्मय सत्ता का भी संस्पर्श करना होगा। भविष्य के विज्ञान को अपना यह आग्रह भी छोड़ना होगा कि जड़ पदार्थ से चेतना का आविर्भाव होता है। विज्ञान की अध्ययन–सीमा जड़ पदार्थ है। यदि वह अपनी अध्ययन–सीमा जड़ पदार्थ तक सीमित रखता है तो यह संगत है मगर जड़ पदार्थ से चेतना का भी आविर्भाव होता है – यह मानना विज्ञान का दुराग्रह है।

आज हमें धर्म के केन्द्र में मनुष्य को प्रतिष्ठित कर उसके पुरुषार्थ एवं विवेक को जाग्रत करना है, उसके मन में सृष्टि के समस्त जीवों के प्रति अपनत्व भाव जगाना है। मनुष्य और मनुष्य के बीच आत्मतुल्यता की ज्योति जगानी है जिससे परस्पर

समझदारी, प्रेम तथा विश्वास उत्पन्न हो सके। धर्म की प्रासंगिकता एक व्यक्ति की मुक्ति में ही नहीं है। धर्म की प्रासंगिकता एवं प्रयोजनशीलता शान्ति, व्यवस्था, स्वतंत्रता, समता, प्रगति एवं विकास से सम्बन्धित समाज सापेक्ष परिस्थितियों के निर्माण में भी निहित है।

धर्म का सम्बन्ध आचरण से है। धर्म आचरणमूलक है। दर्शन एवं धर्म में अन्तर है। दर्शन मार्ग दिखाता है, धर्म की प्रेरणा से हम उस मार्ग पर बढ़ते हैं। हम किस प्रकार का आचरण करें – यह ज्ञान दर्शन से प्राप्त होता है। जिस समाज में दर्शन एवं धर्म में सामंजस्य रहता है, ज्ञान एवं क्रिया में अनुरूपता होती है, उस समाज में शान्ति होती है तथा सदस्यों में परस्पर मैत्री–भाव रहता है।

भारतवर्ष में दर्शन और चिन्तन के धरातल पर जितनी विशालता, व्यापकता एवं मानवीयता रही है, उतनी आचरण के धरातल पर नहीं रही। जब चिन्तन एवं व्यवहार में विरोध उत्पन्न हो गया तो भारतीय समाज की प्रगति एवं विकास की धारा भी अवरुद्ध हो गयी। दर्शन के धरातल पर उपनिषद् के चिन्तकों ने प्रतिपादित किया कि यह जितना भी स्थावर जंगम संसार है, वह सब एक ही परब्रह्म के द्वारा आच्छादित है। उन्होंने संसार के सभी प्राणियों को 'आत्मवत्' मानने एवं जानने का उद्घोष किया, मगर सामाजिक धरातल पर समाज के सदस्यों को उनके गुणों के आधार पर नहीं अपितु जन्म के आधार पर जातियों, उपजातियों, वर्णों, उपवर्णों में बाँट दिया तथा इनके बीच ऊँच–नीच की दीवारें खड़ी कर दीं। गाँधी दर्शन इन सभी दिवारों को तोड़ता है तथा प्रत्येक व्यक्ति को प्राणिमात्र की पीड़ा से द्रवित होने तथा उसकी सेवा करने की प्रेरणा प्रदान करता है। गाँधी दर्शन विश्व को यह दृष्टि प्रदान करता है कि विकास का अर्थ केवल मशीनों के द्वारा अधिक उत्पादन करना नहीं है। विकास अपने में साध्य नहीं है। विकास केवल साधन है। विकास का लक्ष्य मनुष्य है। विकास साधन है और साध्य है – मनुष्य जाति का हित–सम्पादन। विकास का उद्देश्य है – मनुष्य की समग्र उन्नति। विश्व में विकास की ऐसी व्यवस्था स्थापित हो जिससे मनुष्य के अन्तर्जात गुणों का पूर्ण विकास सम्भव हो सके। उसकी सृजनशीलता की विविध रूपों में पूर्ण अभिव्यक्ति सम्भव हो सके, मनुष्य की भौतिक सन्तुष्टि के साथ–साथ उसकी आत्मिक सन्तुष्टि भी हो सके। मनुष्य अपना जीवन सुखी बनाने के साथ–साथ उसे सार्थक भी बना सके। इसके

लिए हमें विकास को पूर्णतः मानवीय दृष्टि से देखना होगा। विश्व की अर्थव्यवस्था की संरचनात्मक समस्याओं का हल ढूँढते समय तथा नीतियों को क्रियान्वित करते समय नीति–निर्माताओं को इस बात को ध्यान में रखना होगा कि नीति का लक्ष्य विकसित एवं विकासशील देशों के समाजों में विद्यमान आर्थिक असमानताओं को दूर करना है। विकास मात्र आर्थिक उन्नति पर ही केन्द्रित नहीं रह सकता। जन–जन की निर्धनता समाप्त करने, रोजगार के अवसर बढ़ाने, पुरुष एवं स्त्री वर्गों की असमानताओं को दूर करने तथा संसार के सभी लोगों की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए सभी देशों से यह अपेक्षित है कि वे एकीकृत तथा सार्वदेशिक दृष्टि से विचार करें, नीतियाँ बनावें तथा कार्यक्रमों को क्रियान्वित करें। गरीबी और सामाजिक कुव्यवस्था ये दोनों ही आर्थिक विकास और जीवन–स्तर–उन्नयन के मार्ग की मुख्य रुकावटे हैं। इस कारण विकास की दिशा में आर्थिक उपायों के साथ–साथ सामाजिक दृष्टि से भी संगठित प्रयास किए जाने जरूरी हैं।

गाँधी ने शहरों की अपेक्षा गाँवों को अधिक महत्व दिया। इस मुद्दे पर कुछ तथाकथित प्रगतिशील विद्वान गाँधी को दकियानूस, रूढ़िवादी, पुरातनपंथी एवं प्रतिगामी ठहरा सकते हैं। उन विद्वानों को खुले दिमाग से मुलाहज़ा फरमाना चाहिए कि हमारे सर्वाधिक विकसित महानगरों में जनसंख्या का बढ़ता बोझ भारी आर्थिक और सामाजिक समस्याएँ ही पैदा नहीं कर रहा है अपितु पर्यावरण के लिए भी संकट उत्पन्न कर रहा है। शहरी जनसंख्या के विस्तार के कारण शहरों में अन्धाधुन्ध भवनों का निर्माण हो रहा है। अव्यावहारिक भवन–निर्माण–परियोजनाओं के कारण शहरों के मकान 'घर' न होकर 'माचिस की बन्द डिब्बियों' के रूप में बदलते जा रहे हैं। प्रत्येक शहर अपनी पहचान खोता जा रहा है तथा इस्पात और कंकरीट आदि भौतिक पदार्थों से निर्मित बहुमंजिली इमारतों के जंगल में बदलता जा रहा है। शहरों का फैलाव इतना अधिक बढ़ता जा रहा है कि व्यक्ति को अपने फ्लैट से निकलकर अपने कर्म–स्थल तक पहुँचने तथा वहाँ से अपने फ्लैट लौटने में समय, श्रम एवं अर्थसाध्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है; कारों की मीलों लंबी कतारों में फँसी अपनी कार में बैठे बैठे घंटों इंतजार का तनाव झेलना पड़ता है। सामाजिक जीवन में एकाकीपन, अलगाव, मानसिक दबाव तथा असुरक्षा की

भावनाएँ बढ़ रही हैं। इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति भरी भीड़ में अकेला होता जा रहा है।

मानसिक अशान्ति के इस चक्रव्यूह में फँसा हुआ व्यक्ति भौतिक पदार्थों के अधिकाधिक उपभोग की तरफ बढ़ रहा है। विकसित देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपने संसाधनों के कारण अपने उत्पादनों की बाजारों में खपत बढ़ाने के लिए उपभोक्ताओं को तरह–तरह से आकर्षित करके 'उपभोग–प्रवृत्ति' को बढ़ावा देने में संलग्न हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि पृथ्वी का सम्पूर्ण पर्यावरण तरह–तरह के प्रदूषणों से दूषित हो गया है तथा प्राकृतिक संसाधनों का दोहन अपनी चरमसीमा पर पहुँच गया है। आकाश, भूमि तथा जल तीनों की चिन्त्य स्थिति है। विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों के कारण पृथ्वीलोक के जीवन की रक्षा करने वाली 'ओजोन परत' क्षत–विक्षत हो चुकी है। पृथ्वी की हरियाली रेगिस्तान में बदलती जा रही है। आदमी जंगल के हरे–भरे पेड़ो को काटता जा रहा है जिसके कारण रेगिस्तान बनने की क्रिया तेज होती जा रही है। चरागाहों तथा खेती करने योग्य जमीन का आवश्यकता से अधिक उपयोग किया जा चुका है। मनुष्य ने अपना तथा अपने पशुओं का पेट भरने के लिए ही नहीं अपितु मकानों के निर्माण, ईधन,औषधि आदि के लिए भी पेड़–पौधों को बहुत बड़ी मात्रा में नष्ट कर दिया है। जब वर्षा होती है तब वर्षा का जल भूमि में प्रवेश किये बिना भूमि की खाद को बहा ले जाता है। इसके कारण धीरे–धीरे वनस्पति तथा खादवाली मिट्टी के नष्ट हो जाने से मरुस्थल का दायरा बढ़ रहा है। महानगरों तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों के कार्बनिक तथा अकार्बनिक अवशिष्ट जल में मिलकर अधिकांश नदियों के जल को प्रदूषित कर रहे हैं। प्रदूषित जल ही रिस–रिसकर भूमि के अन्दर जाकर भूमिगत जल में मिल रहा है। एक दो दशकों में पानी की जरूरत दुगनी हो जाएगी। एक तरफ पानी निरन्तर प्रदूषित हो रहा है, दूसरी तरफ उपभोक्ताओं के लिए अधिकाधिक पेयजल उपलब्ध कराने की समस्या बढ़ती जा रही है। भौतिकवादी दृष्टि संघर्ष एवं दोहन की वृत्तियों का संचार करती है। गॉधी की दृष्टि अहिंसा पर आधारित है। उनकी दृष्टि व्यक्ति के मन में अहिंसा का भाव पैदा करती है। अहिंसक व्यक्ति कभी प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का प्रयास नहीं करता। अहिंसक व्यक्ति प्रकृति से सामरस्य स्थापित करता है। अहिंसक व्यक्ति प्रकृति के संसाधनों का दोहन नहीं

करता। वह प्रकृति एवं परिवेश के साथ भावात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है। वह इस विचार के प्रति प्रतिबद्ध होता है कि मनुष्य जगत तथा प्रकृति जगत अन्योन्याश्रित हैं। मनुष्य को प्रकृति पर शासन करने की लालसा को छोड़कर उसके साथ समरस होने का प्रयास करना होगा। मनुष्य को यंत्रों पर इतना अधिक आश्रित नहीं होना चाहिए कि वह प्रकृति से ही दूर चला जाए। मनुष्य एवं उद्योग दोनो के यंत्रचालित होने के दुष्परिणाम स्पष्ट हैं। इससे बेरोजगारी का अनुपात बढ़ रहा है तथा प्रकृति में प्रदूषण का प्रसार हो रहा है। मानव संसाधनों का सुनियोजित उपयोग जरूरी है। मानव–श्रम एवं शक्ति के पूर्ण समायोजन हो जाने के बाद ही औद्योगिक प्रतिष्ठानों को 'स्वचालन' की शरण लेनी चाहिए, मनुष्य को 'रोबोट' से अधिक महत्व मिलना चाहिए। ऐसी प्रबन्ध कुशलता से क्या लाभ जो मानव–समूहों को रोजगार के अवसरों से वंचित कर दे। उत्पादन, प्रगति, विकास, समृद्धि आदि की सार्थकता तभी मानी जा सकती है जब ये समाज में मनुष्य–समूहों तथा समुदायों की आशा–आकांक्षाओं की पूर्ति में अपना योग देने में समर्थ हों तथा मनुष्य जाति में मानवीयता, नैतिकता एवं सृजनात्मकता की भावना का विकास करें। गाँधी के विचार स्पष्ट हैं : 'पृथ्वी सभी मनुष्यों की जरूरतों को पूरा करने के लिए पर्याप्त संसाधन प्रदान करती है; लेकिन लालच पूरा करने के लिए नहीं'।

गाँधी दर्शन एवं विश्व शान्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना :

विकास एवं प्रगति का लक्ष्य है – विश्व शान्ति तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के प्रति समर्पित तथा प्रकृति–जगत् के संरक्षण एवं उसके प्रति मैत्री–भाव के लिए संकल्पित मानवीय भावना का विस्तार। विश्व शान्ति की स्थापना के लिए विश्व के राष्ट्र सदस्यों का विश्व शान्ति के लिए संकल्पित होना आवश्यक है। जिन देशों ने युद्ध की यातनाओं एवं विभीषिकाओं को झेला है, वहाँ की जनता आगामी युद्ध की आशंका मात्र से भयाक्रान्त है। यूरोप की बहुत सी महिलाएँ माँ नहीं बनना चाहतीं। उन्होंने माँ बनने की स्त्रीसुलभ इच्छा का बलिदान कर दिया है। वे अपने बच्चों को अपनी आँखों के सामने आशंकित युद्ध के कारण मरते नहीं देखना चाहतीं। वैज्ञानिक अध्ययनों ने इस तथ्य को स्पष्ट किया है कि सीमित नाभिकीय युद्ध की अवधारणा भ्रान्तिपूर्ण है। भविष्य में कभी 'तृतीय विश्वयुद्ध' नहीं होगा, अगर हुआ तो वह 'अन्तिम युद्ध' होगा। अगर कभी वह युद्ध छिड़ गया तो वह सम्पूर्ण मानवीय जीवन

तथा भूमण्डल का विनाशकारक अवसान होगा। नाभिकीय प्रौद्योगिकी की प्रचण्ड विध्वंसक क्षमता के निःसृत होने पर केवल आज का पार्थिव जीवन ही नष्ट नहीं हो जाएगा, अपितु वह सृष्टि के ब्रह्मांडीय इतिहास एवं लोकों के पारस्परिक सन्तुलन–चक्र के भी विपरीत होगा। नाभिकीय टकराव की विनाश लीला में न कोई विजेता होगा न कोई पराजित। इसका परिणाम होगा : (1) मानवता का अन्त (2) प्रकृति का अन्त (3) भूमण्डल से सभी प्रकार के जीवन का अन्त।

एक देश की अथवा दुनिया के एक क्षेत्र की शान्ति का विचार अब अप्रासंगिक हो गया है। किसी देश अथवा क्षेत्र की सीमाओं में शान्ति अथवा संघर्ष को प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता। किसी की विजय अथवा किसी की पराजय के प्रश्न अर्थहीन हो गए हैं। आज सम्पूर्ण पृथ्वी के अस्तित्व या अनस्तित्व के बीच किसी एक का चयन करना है। विश्व शान्ति एवं हम सबकी सत्ता अन्योन्याश्रित हैं। विश्व शक्तियों के बीच किसी मुद्दे पर तनाव है तो उसकी परिणति युद्ध में नहीं होनी चाहिए। यह शुभ लक्षण है कि संसार के अधिकांश देशों में जनता की शक्ति बढ़ रही है, शासकों की शक्ति घट रही है। किसी देश के राष्ट्राध्यक्ष की तानाशाही के विरुद्ध जन–जागृति बढ़ रही है। जनमत का दबाव तेज होता जा रहा है। जिस देश व समाज में हिंसात्मक क्रान्ति होती है वह प्रतिक्रिया में मानसिक उत्पीड़न को जन्म देती है। हिंसा के माध्यम से सत्ता पर कब्जा करने के बाद शासनाध्यक्ष 'आत्म–स्वातंत्र्य' की बात को हवा में उड़ा देते हैं। सभी प्रकार की स्वतंत्रता का दमन किया जाता है तथा सामान्य नागरिकों को बन्दी की तरह रहने के लिए विवश बना दिया जाता है। इसके विपरीत राजनीतिक दृष्टि से 'प्रजातन्त्र' एवं 'लोकतंत्र' अहिंसावादी जीवन दर्शन की परिणति हैं।

गाँधी अहिंसक जीवन एवं सद्भावपूर्ण–व्यवहार के प्रति प्रतिबद्ध थे और उनका मत था कि 'यही विश्व–संस्कृति और विश्व–मानवता की आधारशिला बन सकते हैं।' अहिंसा की भावना पर आधारित विश्व शान्ति की प्रासंगिकता, सार्थकता एवं प्रयोजनशीलता स्वयंसिद्ध हैं। विश्वशान्ति का अर्थ केवल यही नहीं है कि संसार में कहीं युद्ध न हो। विश्व शान्ति की सकारात्मक अवधारणा सम्पूर्ण मानव जाति की प्रगति एवं उसके विकास में निहित है। विश्व शान्ति की सार्थकता एक नए विश्व के निर्माण में है।

प्रत्येक व्यक्ति को संसार के सभी प्राणियों के प्रति मैत्री भाव रखना चाहिए।पृथ्वीलोक के विभिन्न सामाजिक संवर्गों एवं राजनीतिक इकाइयों के बीच सद्भाव, समझदारी एवं सहयोग आवश्यक है। यह आवश्यक है कि सामाजिक धरातल पर आत्मतुल्यता एवं समता की भावना विकसित हो, राजनीतिक धरातल पर सभी देश परस्पर एक–दूसरे की स्वतंत्रता तथा प्रभुसत्ता का आदर करें एवं एक–दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करें तथा आर्थिक धरातल पर देशों के बीच व्याप्त आर्थिक असन्तुलन एवं वैषम्य समाप्त हो। जिस प्रकार सामाजिक जीवन में सद्भावना के विकास के लिए दूसरे व्यक्ति, वर्ग, धर्म आदि के प्रति सहिष्णुता की भावना जरूरी है उसी प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के लिए सभी देशों में इस बात पर आम सहमति होनी चाहिए कि हर देश को अपने रचनात्मक विकास का रास्ता स्वयं चुनने का अधिकार है। हर देश को यह अधिकार है कि वह अपने देश की जनता की आकांक्षाओं एवं इच्छाओं के अनुरूप अपने भविष्य के मार्ग का निर्धारण कर सके तथा उस रास्ते पर अपना समाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विकास कर सके। सामाजिक जीवन में सद्भावना के लिए यह आवश्यक है कि चिन्तन के धरातल पर उन्मुक्तता, अनाग्रह एवं सहिष्णुता के साथ–साथ संवेदना के धरातल पर एकता, पारस्परिक समझदारी, प्रेम एवं सहयोग की भावना विकसित हो। विभिन्न देशों के बीच परस्पर सम्पर्क बढ़ना आवश्यक है, विचारों का आदान–प्रदान होना आवश्यक है। राजनीतिज्ञों एवं राजनयिकों के अतिरिक्त देशों के सामान्य नागरिकों के बीच भी सम्पर्क बढ़ना जरूरी है।

यह भी आवश्यक है कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग की 'बहुपक्षीय व्यवस्था' के प्रति सभी देशों की आस्था बढ़े और प्रतिबद्धता सुदृढ़ हो। सर्वसामान्य की भलाई एवं कल्याण के लिए किए जाने वाले सहकारी कार्यों का दायरा बढ़ना चाहिए। आज पृथ्वीलोक में बहुत–सी जटिल समस्याएँ उत्पन्न हो गयी हैं। पर्यावरण में सुधार करने, जनसंख्या वृद्धि तथा आबादी पर नियन्त्रण करने, जन–जन की निर्धनता समाप्त करने, रोजगार के अवसर बढ़ाने तथा सभी लोगों की बुनियादी जरुरतों को पूरा करने आदि जैसे सार्वभौम चिन्ता के प्रश्नों का समाधान 'बहुपक्षीय व्यवस्था' के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के अलावा अन्य किसी दूसरे उपाय से सम्भव नहीं है। इस दृष्टि से सभी देशों को मानवीय कल्याणकारी एवं पृथ्वीलोक के पर्यावरण एवं

परिवार–नियोजन सम्बन्धी प्रतिबद्धताओं को कार्यरूप देने के लिए सार्थक एवं सक्षम भूमिका निभानी होगी। सभी देशों को मानवीय विकास एवं प्रगति को केवल राष्ट्रीय दृष्टि से न देखकर पूर्णतः मानवीय और आधारभूत अनिवार्यता की दृष्टि से देखना होगा; मौजूदा असमानताओं को दूर करने की दिशा में सहयोगी बनना होगा और संसार में सभी जगह मनुष्य की जिन्दगी तथा विकास की दर को बेहतर बनाने में सहायता करनी होगी। इसी रास्ते शान्ति, न्याय, समानता और विकास पर आधारित नई विश्व–व्यवस्था स्थापित हो सकेगी, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध लोकतांत्रिक बन सकेंगे तथा 'नई विश्व सूचना एवं संचार व्यवस्था' का विकास हो सकेगा।

समकालीन युग ने इस तथ्य को पहचाना है कि आर्थिक विषमता को समाप्त किये बिना समाज में सच्ची सुख–शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। विभिन्न देशों की आर्थिक असमानता और उनके असन्तुलन को मिटाना जरूरी है। जिन देशों के समाजों में निर्धनता, निरक्षरता, भुखमरी, कुपोषण और रोगग्रस्तता है वह इनके ऊपर हुए औपनिवेशिक शोषण का परिणाम है। यदि इन देशों के समाजों की स्थितियों को तत्काल नहीं सुधारा गया तो अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर आर्थिक असन्तुलन से उद्‌भूत तनाव तथा संघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न हो जायेंगी। विकसित एवं सुलभ संचार के माध्यमों पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के विज्ञापनों को देखे जाने का यह परिणाम हुआ है कि निर्धन देशों के व्यक्तियों की आशाएँ एवं आकांक्षाएँ पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गयी हैं। ये लोग अपनी स्थितियों में तत्काल सुधार चाहते हैं। इन लोगों ने अपनी माँगों पर अधिकाधिक बल देना शुरु कर दिया है। इससे उनमें अशान्ति व आक्रोश दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। नई अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के लिए किया जाने वाला संघर्ष मात्र जागरूकता तक सीमित नहीं है। यदि तात्कालिक आर्थिक वैषम्य एवं असन्तुलन को दूर नहीं किया गया तो उसके परिणाम भयावह होंगे। आज हम पाते हैं कि कल तक जो देश विकसित एवं संपन्न देशों की श्रेणी में आते थे वे देश आज द्रव्य–पूँजी की कमी, मुद्रा के अवमूल्यन, ऋणों के बोझ, ब्याज की बढ़ती हुई दरों आदि के कारण मुद्रा–स्फीति का सामना कर रहे हैं तथा उनका आर्थिक स्वरूप टूटने की स्थिति में है। भुगतान के सन्तुलन के घाटे की वृद्धि तथा बढ़ते हुए ऋणों के बोझ से यदि इन देशों की अर्थव्यवस्था चरमरा गयी तो इसका प्रभाव अन्ततः सभी देशों पर पड़ेगा। बढ़ती बेरोजगारी, घटती माँग, आर्थिक मंदी तथा आर्थिक

निष्क्रियता आदि के दुष्परिणाम सभी को झेलने पड़ेंगे। सुरक्षित, स्थायी, समृद्ध और समीचीन सार्वभौम अर्थव्यवस्था की तत्काल स्थापना युगीन आवश्यकता है। अर्थशास्त्रियों ने प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत किया है कि सैनिक व्यय का बेरोजगारी तथा मुद्रास्फीति के साथ सह–सम्बन्ध है। संसाधनों को युद्ध सामग्री एवं शस्त्र उत्पादन के उच्च प्राविधिक क्षेत्रों की ओर मोड़े जाने से विश्व में बेरोजगारी एवं मुद्रास्फीति बढ़ती है। निजी उद्योग अस्त्र–शस्त्रों के विक्रय में भारी मुनाफा कमाते हैं। वे रक्षा–अनुबन्धों में जिस प्रकार की दिलचस्पी लेते हैं वह सर्वविदित है। सैनिक उत्पादन में की गयी पूँजी–निवेश की अपेक्षा असैनिक उत्पादन में की गयी पूँजी–निवेश से काफी ज्यादा रोजगार मिलता है। शस्त्रों का उत्पादन करने वाले उद्योग अपने निजी स्वार्थों के लिए 'शीतयुद्ध' का वातावरण बनाते तथा विकसित करते हैं, शस्त्रों की होड़ का मनोविज्ञान बनाने में उत्प्रेरक का काम करते हैं तथा हथियारों को खरीदवाने के लिए देशों को कर्जदार बनवा देते हैं। विश्व में कुल वार्षिक सैन्य–व्यय इतना अधिक है कि इस धनराशि के पचास प्रतिशत भाग को खाद्य पदार्थों एवं उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में विनियोजित एवं हस्तांतरित करने से पूरे विश्व की भुखमरी, गरीबी, बेरोजगारी दूर हो सकती है।

इस समय जो अनुसंधान हो रहे हैं उनको बन्द करने की आवश्यकता नहीं है; उनके प्रयोग–क्षेत्रों को बदलने की जरूरत है। नाभिकीय अनुसंधानों को अभी सैनिक कार्यों के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इन अनुसंधानों का विनियोग ऊर्जा की समस्या के समाधान के लिए किया जा सकता है। इसी प्रकार जीव–रसायनशास्त्र के क्षेत्र में जो अनुसंधान हो रहे हैं उनका प्रयोग विध्वंस–सामग्री एवं युद्ध सामग्री के उत्पादन के स्थान पर स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिए किया जा सकता है।

आज के विश्व के समक्ष उपस्थित चुनौतियों का प्रभावकारी ढंग से मुकाबला करने, विभिन्न देशों की गतिविधियों में समरसता स्थापित करने और बहुपक्षीयवाद की अवधारणा को सुदृढ़ करने के लिए यह आवश्यक है कि संयुक्त राष्ट्र संघ और अधिक मजबूत बने, विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों की कार्य–पद्धति और अधिक कारगर बने। निरस्त्रीकरण, देशों की सामाजिक–आर्थिक समस्याओं का समाधान, प्रत्येक देश को आधुनिक वैज्ञानिक एवं प्रौद्योगिकी ज्ञान का लाभ, संयुक्त राष्ट्र सशस्त्र सेना एवं संयुक्त राष्ट्र आपातिक सेना की शक्ति में अभिवृद्धि तथा संयुक्त

राष्ट्र संघ के अभिकरणों के संसाधनों में वृद्धि आदि क्षेत्रों में सभी देशों के द्वारा तत्काल कदम उठाया जाना आवश्यक है जिससे इस संस्था की क्षमता में वृद्धि हो सके तथा इसके प्रति देशों की आस्था बढ़ सके। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सामाजिक और आर्थिक प्रगति में तेजी लाने के लिए भरोसेमन्द एवं कारगर तंत्र निर्मित करने की प्रक्रिया में तेजी लाने की आवश्यकता असंदिग्ध है।
विश्वबन्धुत्व की भावना का पल्लवन आवश्यक है। विश्व के सभी लोग इस पृथ्वी रूपी जहाज पर सवार सहयात्री हैं। सहयोग एवं मैत्री की इस भावना से शान्ति आन्दोलन के प्रति प्रतिबद्ध शक्तियों को संगठित एवं पुनर्बलित करने की आवश्यकता है। इस भावना के विकास की आवश्यकता है कि यह पूरी दुनिया अन्ततः एक है। यदि विश्व–शान्ति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना खंडित होती है तो अशांति की ज्वाला पूरे विश्व को भस्मीभूत कर देगी। शान्ति एवं सद्भावना के विकसित एवं परिपुष्ट होने पर हमारी यह धरती ही स्वर्ग बन जाएगी। देवता बाहर नहीं है, हमारी अन्तश्चेतना में है। अपनी अन्तश्चेतना की दिव्य ज्योति को प्रखर करने की आवश्यकता है। आज के युग ने मशीनी सभ्यता के चरम विकास से संभावित विनाश के जिस राक्षस को उत्पन्न कर लिया है वह किसी यंत्र से नहीं अपितु गाँधी के 'अहिंसा–मंत्र' से ही नष्ट हो सकता है।

———————————————————————————————————————

प्रोफेसर महावीर सरन जैन
(सेवा निवृत्त निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान)
123, हरि एन्कलेव, चाँदपुर रोड, बुलन्द शहर – 203001
mahavirsaranjain@gmail.com